हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

शीश राम

(आपराधिक अपील संख्या 1091, 2008)

15 जुलाई 2008

[डॉ अरिजीत पसायत और पी. सदाशिवम, जे.जे.]

निर्णय/आदेश: गैर-तर्कसंगत आदेश- संधारणीयता को- मानाः कारणों के अभाव में आदेश को प्रदान करना, संधारण योग्य नहीं।

विचारण न्यायालय ने बरी करने का आदेश पारित किया। राज्य ने अपील दायर करने की अनुमति के लिए आवेदन दायर किया जिसे खारिज कर दिया गया।

इस न्यायालय में अपील में राज्य का रुख यह था कि आवेदन का निपटारा नॉन स्पीकिंग और्डर द्वारा किया गया था।

न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1 कारण किसी आदेश में स्पष्टता लाते हैं। न्याय के स्पष्ट विचार पर, उच्च न्यायालय को अपने आदेश में, चाहे वह कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, अपने दिमाग के प्रयोग का संकेत देते हुए, अपने कारण सामने रखने चाहिए थे, खासकर तब जब उसका आदेश चुनौती के आगे के अवसर के लिए उत्तरदायी हो। कारणों की अनुपस्थिति ने उच्च न्यायालय के फैसले को टिकाऊ नहीं बना दिया है। [पैरा 6] [995-एफ]

पंजाब राज्य बनाम *भाग सिंह* (2004) 1 एससीसी 547- पर निर्भर।

ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन (1971) 1 All E.R. 1148; *अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री* (1974) LCR 120- संदर्भित।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2008 की आपराधिक अपील संख्या 1091

शिमला स्थित हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के सीऔरएल एमपी 274/2006 में अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 8.5.2006 से।

अपीलकर्ता की ओर से नरेश के. शर्मा और जेएस अत्री।

डॉ. अरिजीत पसायत, जे. द्वारा न्यायालय का निर्णय सुनाया गया!

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में चुनौती हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के उस फैसले को दी गई है, जिसमें अपीलकर्ता-राज्य द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी के फैसले के खिलाफ अपील दायर करने की अनुमति देने के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था। अर्थात् अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कंडाघाट, कैंप, सोलन, एच.पी. आपराधिक मामला क्रमांक 133/2 दिनांक 02/95 में प्रतिवादी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 420, 467, 468 और 471 के तहत दंडनीय अपराधों के कथित कमीशन के लिए मुकदमे का सामना करना पड़ा।

3. हालाँकि अपील के समर्थन में विभिन्न बिंदुओं पर आग्रह किया गया था प्राथमिक रुख यह था कि गैर-तर्कसंगत आदेश से आवेदन का निपटारा कर दिया गया था।

4॰ नोटिस तामील होने के बावजूद उत्तरदाता की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

5॰ वर्तमान अपील में जो आदेश दिया गया है वह इस प्रकार है:

"दर्ज हो। सुना गया। खारिज कर दिया गया।"

6॰ कारण किसी क्रम में स्पष्टता लाते हैं। न्याय के स्पष्ट विचार पर उच्च न्यायालय को अपने आदेश में, चाहे वह कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, अपने मन के अनुप्रयोग का संकेत देते हुए, अपने कारण सामने रखने चाहिए थे, खासकर तब जब उनका आदेश चुनौती के अन्य अवसरों के लिए उत्तरदायी हो। कारणों की अनुपस्थिति ने उच्च न्यायालय के फैसले को टिकाऊ नहीं बना दिया है।

7॰ यहां तक कि प्रशासनिक आदेशों के संबंध में भी *ब्रीन बनाम अमलगमेटेड-इंजीनियरिंग यूनियन (1971* (1) ऑल ईऔर 1148) में लॉर्ड डेनिंग एमऔर ने कहा, "कारण बताना अच्छे प्रशासन के बुनियादी सिद्धांतों में से एक है"। *अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री* (1974 एलसीऔर 120) में यह देखा गया: "विफलता का कारण बताने का प्रयास न्याय से इनकार करने के बराबर है। कारण निर्णय लेने वाले के दिमाग और विवाद में आए निर्णय या निष्कर्ष के बीच जीवंत संबंध हैं। कारण व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों को दर्ज करने पर जोर इस बात पर है कि यदि निर्णय "स्फिंक्स के गूढ़ चेहरे" को उजागर करता है, तो यह अपनी चुप्पी से, इसे न्यायालयों के लिए लगभग असंभव बना सकता है। निर्णय की वैधता तय करने में अपना अपीलीय कार्य निष्पादित करना या न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना। तर्क का अधिकार एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है, कारण कम से कम मन के अनुप्रयोग को इंगित करने के लिए पर्याप्त है। को। मामला न्यायालय के समक्ष है। दूसरा तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष। जान सकते हैं कि फैसला उनके खिलाफ क्यों गया है. प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओं में से एक है आदेश के कारणों को स्पष्ट करना, दूसरे शब्दों में, बोलना। "स्फिंक्स का गूढ़ चेहरा" आमतौर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है।

8. पंजाब राज्य बनाम भाग सिंह (20'04 (1) एससीसी 547) में, इसे इस प्रकार देखा गया:

“4. अपीलकर्ता-राज्य के विद्वान वकील के अनुसार, उच्च न्यायालय के लिए यह बताना अनिवार्य था कि अनुमति/स्वीकृति देने की प्रार्थना क्यों अस्थिर पाई गई। ऐसे किसी भी कारण के अभाव में उच्च न्यायालय का आदेश बचाव योग्य नहीं है। संहिता की धारा 378(3) दोषमुक्ति की स्थिति में स्वीकृति देने की उच्च न्यायालय की शक्ति से संबंधित है। धारा 378 (1) एवं (3) संहिता का विवरण इस प्रकार है:

> "378 (1) उप-धारा (2) में जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय और उपधारा (3) और उपधारा (5) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार, किसी मामले में लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से [जो खण्ड (क) के अधीन आदेश नहीं है] या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकेगी।]
>
> (3) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अधीन [उच्च न्यायालय को कोई अपील] उच्च न्यायालय की इजाजत के बिना ग्रहण नहीं की जाएगी।
>
> 5. विचारण न्यायालय को पूरे सबूतों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना था और फिर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना था। यदि विचारण न्यायालय ने इस संबंध में चूक की थी तो उच्च न्यायालय अपील पर विचार करके ऐसा कार्य करने के लिए बाध्य था। इस मामले के तथ्यों पर विचारण न्यायालय ने अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया, जैसा

कि कानून द्वारा उसे सौंपा गया था। उच्च न्यायालय को ऐसी परिस्थितियों में स्वीकृति दे देनी चाहिए थी और उसके बाद अपील की पहली अदालत के रूप में, स्वतंत्र रूप से रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य की फिर से समीक्षा करनी चाहिए थी और आरोपी के अपराध या अन्यथा के संबंध में अपने निष्कर्ष निष्पक्ष रूप से देने चाहिए थे। वह ऐसा करने में विफल रहा है. इसमें शामिल प्रश्न मामूली नहीं थे. स्वतंत्र गवाह की आवश्यकता और आधिकारिक गवाहों की गवाही को खारिज करना, भले ही वह विश्वसनीय, ठोस या भरोसेमंद हो, अपील में निर्णय की आवश्यकता थी। उच्च न्यायालय ने बरी किए जाने के खिलाफ अपील दायर करने की अनुमति देने से इनकार करने का कोई कारण नहीं बताया है, और ऐसा लगता है कि वह इस तथ्य से पूरी तरह से अनभिज्ञ है कि इस तरह के इनकार से, अपीलीय मंच द्वारा बरी करने के आदेश की बारीकी से जांच की गई है। एक बार और हमेशा के लिए खो गया. उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए जाने के विरुद्ध अपील पर जिस तरह से कार्रवाई की गई है, उसमें बहुत कुछ अपेक्षित नहीं है। कारण किसी क्रम में स्पष्टता लाते हैं। न्याय के स्पष्ट विचार पर, उच्च न्यायालय को अपने आदेश में, चाहे वह कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, अपने दिमाग के प्रयोग का संकेत देते हुए, अपने कारण सामने रखने चाहिए थे, खासकर तब जब उनका आदेश चुनौती के आगे के अवसर के लिए उत्तरदायी हो। कारणों की अनुपस्थिति ने उच्च न्यायालय के आदेश को टिकाऊ नहीं बना दिया है। इसी तरह का विचार *यूपी राज्य बनाम बट्टन और अन्य* (2001 (10) एससीसी 607) में व्यक्त किया गया था। लगभग दो दशक

पहले *महाराष्ट्र राज्य बनाम विट्ठल राव प्रीतिराव चव्हाण* (एआईऔर 1982 एससी 1215) में स्वीकृति प्रदान करने के लिए एक आवेदन से निपटने के दौरान बोलने के आदेश की वांछनीयता पर प्रकाश डाला गया था। ऐसे मामलों में कारणों को इंगित करने की आवश्यकता को न्यायिक रूप से अनिवार्य माना गया है। *जवाहर लाल सिंह बनाम नरेश सिंह और अन्य के* मामले में इस दृष्टिकोण को दोहराया गया था । (1987 (2) एससीओ 222)। इस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा का पालन करने के लिए न्यायिक अनुशासन को किसी भी प्राधिकारी या न्यायालय द्वारा किसी भी बहाने से छोड़ा नहीं जा सकता है। चाहे वह किसी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय ही क्यों न हो, जो भारत के संविधान, 1950 (संक्षेप में 'संविधान') के अनुच्छेद 141 से अनभिज्ञ है।"

9॰ अपील स्वीकार की जाती है ।

अपील स्वीकृत।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी दिव्या गोदारा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।